स्त्री की 'पवित्रता' पुरुष का अहम

लिली सिंह

भारतीय समाज में जहां पुरुष व औरत की बराबरी के दावे हैं, तो व्यावहारिक और सामाजिक पूर्वाग्रह भी हैं जो बराबरी को चुनौती के तौर पर उभारते हैं। सामाजिक दासता और रूढ़ियों की शिकार औरतें मिथकीय शोषणों को स्वीकार करने के लिए मजबूर हैं। इस मजबूरी का ज्वलंत रूप देखने को मिलता है स्त्री की पवित्रता में जहां स्त्री की सारी सहनशीलता एक झटके में खत्म हो जाती है। औरतों के शरीर की पवित्रता की आड़ में उन पर तरह-तरह के अत्याचार किए गए हैं। इस पवित्रता की प्रक्रिया-स्वरूप उसे छलना, कलंकिनी, वेश्या, कुलटा आदि शब्द उपहार-स्वरूप उसे दिए गए। आज भी इसके खिलाफ आवाज उठाने पर डरावने सपने दिखा कर उसे चुप करा देने की कोशिश की जाती है।

औरत सदियों से पवित्रता का सबूत देती रही है। कुंती की तरह छिपकर जीने से द्रोपदी के विद्रोही व्यक्तित्व को वह बार-बार दुहराती रही है। फिर भी वह इस एक शब्द के आगे आत्मसमर्पण करती रही है। औरतों के समृद्ध अतीत से जुड़े वेद, पुराण, मनुस्मृति और बाईबिल की भूमिका जहां बहुत उदारवादी रही है, वेहद कठोर भी रही है। बाईबिल में 'ईव' को फल खाने के बाद अभिशाप मिला और यह भी कहा गया कि वह सदा पुरुष के अनुशासन में रहेगी। मनु ने तो औरत की गनती जूड़ों के साथ करने को कहा और उसे बाप-भाई-पति व बेटे के अधिकार में दब कर रहने को कहा। क्यों दब कर रहे इसे साफ कर दिया गया। ऐसा न करने पर वह अपवित्र हो सकती थी। पर-पुरुष से संबंध बना सकती थी, उसका पतिव्रत धर्म खंडित हो सकता था। इसके बावजूद 'संदिग्धता' में कोई कमी नहीं आई। पवित्रता पर संदेह ज्यों का त्यों रहा।

सिर्फ औरत पर बंदिशें

ऐतिहासिक प्रसंगों को देखने पर एक बात साफ हो जाती है कि चूंकि नियम और कानून पुरुषों ने बनाये थे और ग्रंथ भी उन्हीं ने रचे थे, इसलिए पूर्वाग्रह आश्चर्यजनक नहीं। आज के पढ़े-लिखे समाज में 'पवित्रता' शब्द का महत्व मनोवैज्ञानिक कारणों स दिखाई देता है। पुरुष का अहमवादी दृष्टिकोण, दमनकारी व्यक्तित्व और विविध 'काम्प्लेक्स' के कारण स्त्री के साथ अविश्वास को जोड़कर चलने की सामान्य प्रवृत्ति बन गई है। स्त्री पर हावी होने में पुरुष को अपना पुरुषत्व दिखता है।

औरत सामाजिक प्रतिष्ठा व मर्यादा की दृष्टि से न सिर्फ पुरुष की तुलना में हीन मानी गई, बल्कि समाज के सबसे गिरे और पिछड़े वर्ग के करीब बैठाई गई है, सिर्फ स्पष्ट नहीं मानी गई है, क्योंकि उससे संतान संकट पैदा हो सकता था। यौन पवित्रता का इतनी कठोरता के साथ लागू किया जाना स्त्री की अवनति का मुख्य कारण रहा है। विवाह-योग्य कन्या का पवित्र होना जरूरी समझा गया। इसी पवित्रता के डर से बाल-विवाह जैसी कुप्रथा ने जन्म लिया पर इसमें किसी मनीषी को कोई दोष दिखाई नहीं दिया। उनके मन में काम-वासना पैदा हो जाने भर से कन्या के दूषित हो जाने की बात बैठी रही। समूचे इतिहास में औरत का रूप उपभोग की वस्तु या पवित्रता की कसौटी तक सीमित रहा। विकास की अन्य किसी प्रक्रिया से उसे जोड़ने की जरूरत नहीं समझी गई। भगवान बुद्ध को स्त्री बाधा-स्वरूप दिखलाई दी। संघ में स्त्रियों के आने से संघ के अस्तित्व के लिए खतरा दिखाई देने लगा। सिर्फ विकार के रूप में स्त्री को देखने वाले भगवान बुद्ध को स्त्री पथभ्रष्टा से अधिक कुछ नहीं दिखाई दी। बुद्ध के समय वाली तुच्छता अभी नहीं है।

पुरुष जैसे-जैसे व्यभिचारी होता गया पवित्रता की कठोरता बढ़ती चली गई। अपनी अपवित्रता छिपाए रखने के लिए वह अपनी पत्नी से पवित्रता कठोरता से मांगने लगा। यानी स्त्री शरीर का उपभोग करने वाला (नैतिक व अनैतिक दोनों रूप में) पुरुष स्त्री का निर्णायक बन गया।

सामाजिक कठोरता में कमी नहीं

आज औरतों को कानूनी संरक्षण मिल जाने से पवित्रता की कठोरता कुछ हद तक कम हो गई है, लेकिन परिभाषा ज्यों की त्यों है। ब्याह से पहले वह पुरुष द्वारा छुई न गई हो, उसका कौमार्य खंडित न हुआ हो और ब्याह के बाद पति के अलावा उसके किसी अन्य पुरुष से शारीरिक संबंध न हों। लेकिन पुरुष के लिए आज तक कोई नियम नहीं बनाया गया है। वह व्यभिचारी, परस्त्रीगामी या वेश्यागामी कुछ भी हो सकता है, पत्नी उसे कुछ नहीं कह सकती।

पुरुष गृहस्थ और वैश्यागामी दोनों भूमिकाओं को एक साथ निभा सकता है। स्त्री एक साथ दो पुरुषों से संबंध नहीं रख सकती। वह या तो पत्नी हो सकती है या वेश्या। पवित्रता का यह रूप आज भी ज्यों का त्यों है। स्त्री की पवित्रता को खंडित करने वाला पुरुष ही है, चाहे वह पति के रूप में हो या अन्य रूप में। फिर तमाम बंदिशें औरतों पर ही क्यों ?

'पवित्रता' शब्द के मानवीय पहलुओं पर भी गौर किया जाना चाहिए। यह ऐसी मनोवैज्ञानिक युक्ति है, जिसे थोड़ी भी जागरूक और आत्मनिर्भर औरत नकार सकती है। जब पुरुष एक स्त्री तक सीमित नहीं रह सका है और अधिकार-पूर्वक अन्य स्त्रियों का उपभोग करता है, तब वह औरत से पवित्रता की मांग करने का साहस कैसे कर सकता है। सदियों का इतिहास पुरुषों की कामुक प्रवृत्ति का गवाह रहा है। तब मौजूदा संदर्भ में स्त्री-चरित्र का निर्णायक बन बैठना न तो ईमानदारी है और न समझदारी। नारी चरित्र के निर्णयकर्त्ता के रूप में पुरुष को कभी भी स्वीकार नहीं किया जा सकता। □